Chap-6

षष्ठ अध्याय

साहित्य की समालोचना

षष्ठ अध्याय

साहित्य की समालोचना

विगत अध्यायों में गोविन्द गिल्लाभाई द्वारा सम्पादन कला के बहुआयामी प्रतिफलन को रेखांकित किया जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय में कवि के सम्पादन कार्य की बहुलता तथा कलात्मक चेतना का आंकलन करने का प्रयास किया जा रहा है।

गोविन्द गिल्लाभाई अध्यवसायी साहित्यकार थे जो निरंतर साहित्य की सृजनात्मक वृत्तियों से जुड़े रहे थे। डॉ. मालारविन्दम ने ठीक ही कहा है, ''साहित्य संबन्धी प्रथम प्रवृत्ति जिसका सम्बन्ध इनके साहित्य के परिचय काल से लेकर जीवन के अन्तिम समय तक रहता है, वह है साहित्य का व्यापक अध्ययन तथा उसके प्राचीन, अर्वाचीन हस्तलिखित तथा प्रकाशित सभी प्रकार के ग्रंथों का संग्रह संचयन आदि।''

गोविन्द गिल्लाभाई ने लिखा है कि **''निरन्तर बालपन से आज पर्यन्त काव्य के अभ्यास किया है और आज भी करते हैं, तथापि काव्य समुद्र को पार नहिं पाये हैं।'** इनकी शिक्षा आदि के विचार करते समय इसके बारे में विशेष रूप से लिखा जा चुका है। अतः यहाँ उसके विषय में पुनः कुछ भी नहीं कह कर इनकी अन्य साहित्यिक प्रवृत्तियों के विषय में ही यहां विचार किया जाएगा।

गोविन्द गिल्लाभाई की द्वितीय महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रवृत्ति साहित्य संग्रह कही जा सकती है। यह प्रवृत्ति मूलतः इनकी साहित्य सम्बन्धी जिज्ञासा के कारण विकसित हुई तथा उस समय प्रकाशित पुस्तकों के अभाव के कारण विशेष रूप में प्राप्त हो गई थीं। बाद में स्वयं अनेक स्थानों की यात्रा करके इन्होंने अनेक हस्तलिखित तथा प्रकाशित पुस्तकें प्राप्त की थीं।

अनेक बार ऐसा भी होता था कि हस्तलिखित पुस्तकों का स्वामी अपनी पुस्तकों को बेचने को तैयार नहीं होता था, ऐसी स्थिति में उन्होंने आवश्यक पुस्तकों की नकल करवा कर उन्हें पास मंगवाया था। इस प्रकार गोविन्द गिल्लाभाई ने पुरस्कार रूप में प्राप्त कर, खरीद कर तथा नकल करवाकर अनेकोनेक हिन्दी के अलभ्य प्रकाशित तथा हस्तलिखित ग्रन्थों का सुन्दर संग्रह कर एक प्रमाणिक पुस्तकालय बना लिया था।

पुस्तक संग्रह (हस्तलिखित तथा प्रकाशित) आज भी श्रम साध्य कार्य है, और उस समय तो यह और भी अधिक कठिन काम था। परन्तु गोविन्द गिल्लाभाई कभी निराश नहीं हुए। अनेक बार प्रत्यक्ष परिचय के न होने पर पुस्तक के मूल स्वामी के पास किसी उसके परिचित व्यक्ति से सिफारिश पत्र आदि लिखवाकर भी अपना कार्य करवाना पड़ता था। इस प्रकार सतत् परिश्रम तथा लगन के परिणाम स्वरूप ये जो पुस्तकालय तैयार कर पाये थे आज अपनी सम्पूर्णता में यद्यपि उपलब्ध नहीं है, फिर भी उसकी जो सूची प्राप्त हुई है उससे उसकी समृद्धि का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

साहित्य के अध्ययन तथा संग्रह की सतत् साधना ने गोविन्द गिल्ला भाई को अपने समय की प्रायः सभी प्रमुख साहित्यिक संस्थाओं (हिन्दी गुजराती की) के अत्यधिक निकट ला दिया था। काशी कवि समाज, काशी कवि मण्डल, पटना कवि समाज तथा काशी नागरी प्रचारणी सभा आदि हिन्दी की साहित्यिक संस्थाओं तथा गुजराती साहित्य परिषद आदि गुजराती की साहित्यिक संस्थाओ के ये सक्रिय सभासद थे। काशी कवि समाज, काशी कवि मण्डल तथा पटना कवि समाज आदि संस्थाओं से निरंतर काव्य-समस्याएं आया करती थीं, जिनकी पूर्ति करके ये वहाँ भेजा करते थे। उक्त संस्थाओं के समस्या पूर्ति संग्रहों में इनकी अनेक कविताएं प्रकाशित हुई हैं। सं. 1953 तदनुसार दिनांक 7-5-1896 में काशी कवि समाज की ओर से इनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए एक धन्यवादात्मक पत्र लिखा गया था तथा एक बार पाँच रुपये और दूसरी बार बारह रुपये का पुरस्कार भी भेजा गया था। इसी प्रकार काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से इनकी हिन्दी सेवाओं की प्रशंसा की गयी थी तथा सं. 1981 के भाद्रपद मास में सभा की प्रबंध समिति ने इन्हें सभा का **आनरेरी सभासद** चुना था। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्लाभाई अहिन्दी भाषी प्रदेश में रहते हुए भी हिन्दी भाषी प्रदेश की सभी प्रमुख साहित्यिक संस्थाओं से न केवल परिचित थे वरन् उनसे निकट से सम्बन्धित थे।

साहित्यिक संस्थाओं के अतिरिक्त गोविन्द गिल्लाभाई अपने समय के अनेक हिन्दी साहित्यकार लेखकों से कवि, विद्वान शिक्षक आदि अनेक रूपों में परिचित थे । मिश्रबन्धु विनोद के लेखन काल में इन्होंने मिश्र बन्धुओं के पास सौराष्ट्र से हिन्दी कवियों के विषय में जो सामग्री भेजी थी उसके विषय में मिश्र बन्धुओं ने लिखा है कि 'हमारे प्राचीन मित्र और हिन्दी जगत् के सुपरिचित स्वर्गीय कवि गोविन्द गिल्लाभाई ने काठियावाड़ के कवियों तथा लेखकों की विवेचना सहित एक वृहद् सूची भेजी, जिससे प्रायः 500 अज्ञात लोगों का हमें पता चला ।' मथुरा के कविरत्न नवनीत चतुर्वेदी के पास से गोविन्द गिल्लाभाई ने ग्वाल, घनानन्द आदि अनेक प्राचीन कवियों के हस्तलिखित ग्रंथ मँगाकर उनकी प्रतिलिपि की थी। इस प्रसंग में लिखे गए पत्र आदि को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि कविरत्न नवनीत चतुर्वेदी के साथ इनके घनिष्ट सम्बन्ध थे । इसी प्रकार जोधपुर के मुंशी देवीप्रसाद, डुमरांव के अक्षयवट मिश्र, विप्रचन्द्र कवि, डुमरांव के श्री नकछेदी तिवारी, अजान कवि आदि अनेक हिन्दी के साहित्यकारों से गोविन्द गिल्लाभाई का निकट सम्बन्ध था, जिनके साथ साहित्यिक विषयों को लेकर सदा पत्र-व्यवहार बना रहता था । गुजरात के तत्कालीन अनेक हिन्दी कवि गोविन्द गिल्लाभाई के साथ निकट का सम्बन्ध बनाए रखते थे तथा आवश्यकतानुसार उनसे परामर्श किया करते थे । भुज की पाठशाला के प्रधानाचार्य श्री जीवाराम अजरामर गौर तथा श्री हरिसिंह जी गोहिल आदि गुजरात के प्रमुख हिन्दी कवियों के साथ उनका मित्रता का सम्बन्ध था । सौराष्ट्र में इनकी ख्याति इतनी हो गयी थी कि साहित्य सम्बन्धी प्रश्नों पर परामर्श करने के लिए विद्वान् इनके पास आया करते थे । भुज के प्रसिद्ध कवि गोप (गोपाल जगदेव) इनको अपना गुरू मानते थे तथा अपना ग्रन्थ रुक्मिणी हरम किंवा काव्य प्रभाकर संशोधन इनके पास भेजा था, जिसके अन्त में इस बात का उल्लेख इस प्रकार किया गया हैः

वासी पूर सिहोर के गोविन्द सुकवि सुजान ।
प्रेम सहित यह ग्रंथ सुन, कीनो शुद्ध विधान ॥

इसके अतिरिक्त गोविन्द गिल्लाभाई का अनेक हिन्दी के कवियों के साथ मैत्री पूर्ण सम्बन्ध था, जिन्होंने इनकी तथा इनकी कविता की प्रशंसा में समय-समय पर कुछ छन्द लिखकर इनके पास भेजे हैं । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्लाभाई का सम्बन्ध भी इन सभी व्यक्तियों से साहित्य के कारण ही था । गोविन्द गिल्लाभाई के साहित्यिक व्यक्तित्व के विकास में उनका उक्त व्यक्तियों से सम्बन्ध सहायक तो सिद्ध हुआ ही, साथ ही उनकी साहित्यिक सेवाओं में भी उपकारक सिद्ध हुआ है ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्लाभाई का सम्पूर्ण जीवन हिन्दी साहित्य की सेवा में ही व्यतीत हुआ है । उन्होंने अनेक हिन्दी ग्रंथों की गुजराती टीका कर गुजराती-भाषियों के लिए हिन्दी और भी सुगम बना दी तथा हिन्दी के अनेक ग्रन्थों का संग्रह कर हिन्दी की प्राचीन परम्परा के संरक्षण का महत्वपूर्ण कार्य किया । गोविन्द गिल्लाभाई ने हिन्दी ग्रन्थों का अनुवाद, संपादन समीक्षा आदि जो कार्य किया है उसका अन्यन्य विवेचन किया जाएगा । यहाँ केवल इतना ही ज्ञातव्य है कि मूलतः कवि होते हुए भी हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित और भी अनेक रूपों में इन्होंने सामान्य साहित्य की तथा हिन्दी साहित्य की विशेष सेवा की है । श्रीयुत शुकदेव बिहारी मिश्र ने इनकी रचना गोविन्द ग्रन्थमाला प्रथम भाग के विषय में लिखते हुए कहा है कि 'ये महाशय हिन्दी के एक परम प्रसिद्ध प्राचीन लेखक तथा सुकवि हैं यावज्जीवन इन्होंने हिन्दी के हित में प्रयत्न किया है, और वह श्रम हिन्दी भाषी समस्त जनों के अभिवंद्य, पूज्य और आदरणीय हैं ।' यही बात यदि गोविन्द गिल्लाभाई के समूचे कृतित्व के विषय में कही जाए तो अत्युक्ति न होगी । क्योंकि जीवन पर्यंत इन्होंने जिस परिश्रम तथा लगन के साथ हिन्दी की सेवा की है वह वस्तुतः स्तुत्य है ।[1]

गोविन्द गिल्लाभाई ने अपने साहित्य कृतित्व को दो भागों में बाँटकर रखा था, एक तो उनका स्वयं का साहित्य सृजन था जिसमें उनको मौलिक सृजनात्मक प्रतिभा का निदर्शन हुआ है तथा दूसरी उनकी संग्रहकर्त्ता या सम्पादक की भूमिका थी जिसके कारण वह भारतवर्ष के तमाम हिन्दी साहित्यकारों से जुड़े, हिन्दी साहित्य की अनेक राष्ट्रीय प्रान्तीय तथा स्थानीय संस्थाओं से इनके सम्पर्क स्थापित हुए । उस समय हिन्दी क्षेत्रों से जो अनुसंधान और संकलन सम्पादन का कार्य हो रहा था, उस प्रक्रिया में भी लोग गोविन्द गिल्लाभाई के इस वरिष्ठ महत्व को नकार नहीं पाए थे । मिश्र बन्धुओं तथा रामचन्द्र शुक्ल ने भी गोविन्द गिल्लाभाई के सम्पादन और संकलन को महत्व के साथ स्वीकारा था ।[2] डॉ. मालारविन्दम ने उनकी इसी महत्ता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'गोविन्द गिल्लाभाई अपने कार्य में सदा निष्ठावान रहे हैं । अपनी अज्ञता को छिपाने का प्रयास इन्होंने कभी नहीं किया । प्राचीन कवियों के विषय में लिखते समय जहाँ इन्हें जितना ज्ञात था उतना ही लिखा है । कल्पना के आधार पर अधिक लिखने का प्रयास नहीं किया । जिस कवि के विषय में इन्हें कुछ भी ज्ञात नहीं था, उसके विषय में इन्होंने स्पष्ट लिख दिया है कि 'यह पुस्तक में जितनी कविता है उनमें से तथा कितनीक संस्कृत श्लोकों पर बनाई गई हैं और कितनीक स्वकल्पित हैं तकितनीक आधी भाषान्तर और आधी स्वकल्पित ऐसी मिश्र रचना संयुक्त हैं ।'

इन्हें जो कुछ शोध सामग्री जिस किसी स्थान तथा व्यक्ति से प्राप्त हुई थी उसका स्पष्ट उल्लेख अवश्य किया गया है । हस्तलिखित ग्रन्थों की प्राप्ति का स्थान तथा जिन हस्तलिखित प्रतियों से इन्होंने प्रतिलिलिपि की है, उनके नाम का उल्लेख भी अवश्य किया है । इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्लाभाई ने सदा सत्य के निकट बने रहने का प्रयास किया है तथा कवि जन सुलभ अतिश्योक्तियों तथा कल्पनावृत्त-सत्योल्लेखों से अपने आपको सदा दूर रखा है । यही इनकी सत्यनिष्ठा का सबसे प्रबल प्रमाण है ।

वस्तुपरक वैज्ञानिक दृष्टि अथवा वस्तुस्थिति का यथावत् आंकलन कर्ता के व्यक्तित्व के असृजनात्मक होने का प्रमाण माना जा सकता है । परन्तु गोविन्द गिल्लाभाई का व्यक्तित्व पूर्णतः असृजनात्मक तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु मौलिकता का अधिकांश अभाव इनकी कविता का अध्ययन सिद्ध करता है । आशय यह कि गोविन्द गिल्लाभाई भाव या विचार के सृजन या भाव और विचार को नवीन रूप प्रदान करने में मौलिक अंतर नहीं हैं, परन्तु उनकी व्यवस्था, विश्लेषण तथा वर्गीकरण और तथ्य-शोध में मौलिक अवश्य हैं । अतः यह कहा जा सकता है कि इनकी मौलिकता कल्पना-परक न होकर वस्तुपरक अधिक है जिसे कल्पनानिष्ठ के विपरीत वस्तु-निष्ठ भी कहा जा सकता है ।

जीवन के प्रति गोविन्द गिल्लाभाई की क्या दृष्टि थी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनका उपलब्ध समूचा साहित्य दार्शनिक विचारधाराओं की उलझनों से सर्वथा मुक्त है । यद्यपि इन्होंने वज्रसूचिकोपनिषद् का अनुवाद किया था तथा पौराणिक साहित्य में भी इनकी गति थी परन्तु 19वीं शताब्दी धार्मिक मान्यताओं के विषय में इनकी सम्प्रदाय-निरपेक्ष उदार दृष्टि इनके परब्रह्म पच्चीसी, विष्णु, राम, कृष्ण, महेश, कार्तिकेय, गणेश, हनुमान, पार्वती, राधा, कामदेव आदि सभी प्रमुख देवी-देवताओं की समान प्रार्थना इनके सभी देवों के प्रति समभाव को स्पष्टतः सिद्ध करती हैं । राधा-कृष्ण के विषय में इन्होंने विशेष रूप से अवश्य लिखा है परन्तु उससे यह सिद्ध नहीं होता कि ये राधा-कृष्ण के विशेष भक्त थे । रीतिकालीन कवियों के समान राधा-कृष्ण इनके लिए भी शृंगार के सामान्य आलम्बन मात्र भी हो सकते हैं ।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यद्यपि हिन्दी और गुजराती साहित्य में सामाजिक एवं राष्ट्रीय भावनाओं का अवतरण हो चुका था तथापि हिन्दी साहित्य रीतिकालीन परम्परा से अपने आपको पूर्णतः मुक्त नहीं कर पाया था । गोविन्द गिल्लाभाई इस काल के उन कवियों में से थे जिन पर नवीन युग का प्रभाव अधिक नहीं पड़ा था । आशय यह कि ये परम्परा के

प्रति अधिक आस्थावान होने के कारण अपने युग की नवीन चेतना के प्रति मुख्यतः उदासीन रहे हैं। शास्त्रीय विवेचन में इनकी तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक दृष्टि नवीन युग के अनुरूप कही जा सकती है, परन्तु प्रधानतः इन्हें रीतिकालीन कवि ही कहा जा सकता है।

गोविन्द गिल्लाभाई ने जिस ग्रन्थ का सम्पादन करना चाहा, सर्वप्रथम उसकी आधिकारिक पांडुलिपि प्राप्त करते थे, फिर स्वयं अपने हाथों से उसकी प्रतिलिपि तैयार करते थे, तदुपरांत अन्यान्य स्थानों पर उसकी अन्य प्रतियाँ तलाश करते थे, इस प्रकार एकाधिक पांडुलिपियाँ, प्रतिलिपियाँ मिलजाने पर आप पाठभेद प्रस्तुत करते थे और पाठभेदों के विभिन्न प्राप्त रूपों में से आधिकारिक तथा औचित्यपूर्ण संगत पाठ निकाल कर सम्पादन कार्य को अग्रसर करते थे।

गोविन्द गिल्लाभाई द्वारा सम्पादित इस प्रकार की अनेक कृतियों में यही प्रक्रिया उपयोग में लाई जाती थी।

सम्पादन हेतु कवि की बहुज्ञता : वैसे तो गोविन्द गिल्लाभाई की सम्पादन कला तथा उनके वैदुष्य पर चर्चा की जा चुकी है तथा उनके विपुल कृतित्व से यह प्रमाणित भी हो गया है किन्तु उनकी बहुज्ञता केवल हिन्दी साहित्य के इतिवृत्त तक ही सीमित नहीं थी, विगत पृष्ठों पर हम सम्राट अकबर के विस्मृत तथा अछूते प्रसंगों की चर्चा कर चुके हैं, जो गोविन्द गिल्लाभाई ने परिश्रमपूर्ण शोध से अर्जित किए थे और सामान्य अध्येता उन प्रसंगों से परिचित भी नहीं हैं।

गोविन्द गिल्लाभाई जब कभी भी इस प्रकार का महत्वपूर्ण विषय प्राप्त करते थे, ये प्रसंग विद्वत्समाज से, दरबारी सभाओं से, गोष्ठियों से, पुस्तकालयों से, अन्यान्य भाषाओं के ग्रन्थों से तथा इतिहास ग्रन्थों से वह ग्रहण करते थे।

उनकी निजी डायरी में महाराजा छत्रपति शिवाजी के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी गुजराती भाषा में लिपिबद्ध है जिसका हिन्दी अनुवाद यहां प्रस्तुत किया ज़ा रहा है -

प्रथमपत्र की नकल - 'दक्षिण के महाराजा छत्रपति शिवाजी के चार पत्नियाँ थीं, उनमें निंबाणकर की पुत्री लईबाई से ईस्वी सन् 1629 में संभाजी का जन्म हुआ था। दो वर्ष बाद उसकी माँ का देहांत हो गया इसलिए संभाजी अपने पिता शिवाजी के ही पास रहते थे। तथा इसी से सन् 1666 में शिवाजी जब औरंगजेब से मिलने दिल्ली गए तब संभाजी भी साथ में थे, किन्तु वहां अनुमान के अनुसार उनका सम्मान नहीं हुआ, किन्तु अपमान किया

गया, इसलिए **'दिल्ली का हवा-पानी, मुझे तथा मेरे सैनिकों के लिए अनुकूल नहीं है,'** ऐसी अर्जी बादशाह के सामने करके लश्कर को वापस भेज दिया तथा स्वयं संभाजी के साथ अपने दस बारह खास सरदारों को लेकर वहीं रुक गए। यह देखकर औरंगजेब प्रसन्न हुआ कि अब शिवाजी महाराज उनकी गिरफ्त मे आ गए हैं किन्तु शिवाजी ने अपनी योजना के अनुरूप ही सोच-विचार कर सैनिकों को वापस भेजा था और फिर बाद में बीमारी का बहाना बनाकर पड़ गए फिर बहुत दिन तक अच्छे होने की प्रतीक्षा में दान पुण्य कराने लगे, अमीर उमरावों में मिठाइयों के डले भर-भर कर भिजवाने लगे, इसी क्रम में एक बार शिवाजी अपने पुत्र के साथ टोकरों में छुपकर किले से बाहर निकल गए और संकेत स्थल पर पहुँच गए। वहाँ से सवारी की सुविधा के द्वारा रातदिवस यात्रा करके इलाहबाद, प्रयाग होकर एक कलश नाम के ब्राह्मण के यहां संभाजी को छोड़कर स्वयं वेश बदलकर दक्षिण की ओर रवाना होकर अपने स्थान पर आ गए। इसके बहुत दिन बाद कलश नामक ब्राह्मण भी संभा को लेकर आ गए।

उक्त प्रमाणानुसार संभा जी को कलश ताल के कवि का साहचर्य मिला जिससे उसे हिन्दी भाषा के प्रति लगाव हो गया तथा कलश कवि के पास से भाषा काव्य की शिक्षा लेकर ग्रन्थ पढ़कर कविता करने लगे।

ये शृंगार रस की कविता में इतने डूबे कि रात दिन स्त्रियों के साथ विलास में डूबने लगे। एक खूबसूरत ब्राह्मण कन्या से उसने बलात्कार संभोग किया, यब खबर शिवाजी को लग गई और वे उसे दण्ड देंगे यह जानकर गुप्तरूप से भागकर वह दिल्ली बादशाह के सूबेदार दिलेर खान से मिला और वहां रहकर मराठाओं के प्रति गर्जन करने लगा। तब दिल्ली से औरंगजेब का आदेश पत्र दिलेरखान को मिला कि सांभाजी को कैद करके किले में लाया जाए, यह खबर किसी तरह संभाजी को मिल गई और वह वहाँ से भी भागकर दक्षिण आ गए। शिवाजी के चरणों में गिरकर उसमें क्षमा याचना की, और आश्रय मांगा। तब शिवाजी ने सारे अपराध क्षमा करके जब तक आचरण सुधरें तब तक उसे पन्हाणा किले में नजर कैद करके रख दिया।

यहाँ संभाजी रातदिन काव्य चर्चा, विषय भोग, मदिरा सेवन में व्यस्त रहने लगा। यह खबर भी गुप्त रूप से शिवाजी महाराज को मिल गई, शिवाजी महाराज अपने परिवार वालों से तथा अपने सरदारों से कभी कभी कहते थे कि **'मेरी गैर हाजरी में मेरे राज्य**

का ये क्या करेगा ? राजाराम छोटा होने के कारण उसे राज्यभार दिया नहीं जा सकता, इसलिए रातदिन इस बात की मुझे चिन्ता लगी रहती है ।'

ऐसे वचन शिवाजी के सुनकर उनकी द्वितीय पत्नी सोमटाबाई, जिसके गर्भसे राजाराम का जन्म हुआ था उसने सोचा कि उसके लड़के राजाराम को ही राज्याधिकार मिलना चाहिए, यह सोचकर स्वयं मंत्रीपरिषद में दखल देकर अपनी सत्ता बढ़ाने लगी थी ।

इसी दरम्यान ईश्वी सन् 1600 में अप्रेल महिने की तारीख 5 को अर्थात विक्रम संवत् 1657 के चेत्र सुदी 15 के दिन त्रेपन वर्ष की आयु में महाराज शिवाजी स्वर्गवासी हो गए । राजाराम की माँ सोमराबाई तथा अमीर उमरावों ने मिलकर षड्यंत्र रचकर संभाजी को कैद करके राजाराम को गादी पर बैठाने का यत्न करने लगे और जनार्दन पंत को जिसने कर्णाटक में आक्रमण की बागडोर संभाली थी । उन्हें संभाजी को कैद करने के लिए पन्दाणा में सैनिक लेकर भेजा । पन्दाणा के किलेदार के लिए भी आदेश पत्र भेजा गया । जिस जासूस के साथ आदेश पत्र भेजा था उसे मार डाला गया और किलेदार नयी फौज जमाकर रहने लगा। जनार्दन पंत ने वहाँ पहुँचकर छः दिन तक घेरा डालकर आक्रमण किया किंतु वह ठहर नहीं पाया, और कोल्हापुर वापस चला गया ।

वहाँ जनता को ज्ञात हो गया कि संभाजी को रात में कैदकर लिया जाएगा, यह समाचार जानकर वातावरण ही बदल गया और अनेक सरदार तब संभाजी के पक्ष में हो गए। इस प्रकार अपना समर्पण बढ़ा कर सन् 1670 के जून महिने में वह (संभाजी) रायगढ़ के किले में प्रविष्ट हुआ और राजाराम को कैद कर लिया, तब अठारह महिने बाद अपना राज्याभिषेक कराया । तब से संभाजी स्वतंत्र राजा गिना जाने लगा ।[3]

इस प्रकार की अतिरिक्त जानकारियाँ या ऐतिह्य तथ्य अनुसंधान और अध्ययन से ही एकत्र किए जा सकते हैं, अहिन्दी भाषी ठेठ काठियावाड प्रदेश में रहने वाले गुजराती व्यक्ति द्वारा इस प्रकार का तथ्यान्वेषण स्तुत्य ही है । चाहे हिन्दी साहित्य के संदर्भित ग्रन्थ के लिए ये सूचनाएं महत्वपूर्ण न ही रही हों किन्तु सामान्य अध्येता के लिए ये सूचनाएं तथा तथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण हैं ।

जिस प्रकार कवि ने ऐतिह्य तथ्यों को उद्घाटित करने का यत्न किया है, उसी प्रकार साहित्य सम्बन्धी महत्वपूर्ण जानकारियाँ भी उन्होंने एकत्र की थीं ।

जब गोविन्द गिल्लाभाई ने छत्रपति शिवाजी के आश्रित और निकटस्थ कविमित्र

भूषण के सन्दर्भ में कुछ सम्पादन करने का यत्न किया तो उन्होंने महाराज शिवाजी के बारे में भी ऐतिह्य तथ्य एकत्र किए । गोविन्द गिल्ला भाई लिखते हैं -

'छत्रपति महाराजा शिवाजी तथा भूषण कृत शिवराज-भूषण सम्बन्धी याद-बुक ।'

सतारा के राजवंश माहेला पुरुष ने सन् 1874 में महारानी जी द्वारा अंग्रेज़ी अपील से प्राप्त किया गया तथ्य -[4]

प्रस्तुत वंशावली में छत्रपति शिवाजी की एक सौ पचास पीड़ियों का उनके पूर्वजों का नामोल्लेख किया है, पूरी वंशावली प्रगट की है । ये तथ्य एक सामान्य अध्येता के लिए सर्वथा दुर्लभ है ।

इसी प्रकार **'शिवराज भूषण'** ग्रंथ की चर्चा करते समय टिप्पणी में गोविन्दगिल्ला भाई ने भूषण कवि के विषय में पर्याप्त जानकारी गुजराती भाषा में दी है दूसरा हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है -

'पंडित काशीनाथ पांडुरंग परबरावण द्वारा प्रेषित शिवराज भूषण काव्य दक्कन कालेज के अध्यापक जनार्दन वालाजी मोड़क बी.ए. जयपुर के शास्त्री के पास से सुधरवा कर पूना के ज्ञानप्रश्रय छापाखाने में छपाकर उसीकी मराठी भाषा की भूमिका का गुजराती में भाषान्तर इस प्रकार है -

शिवराज भूषण के उपोद्घात के 18-20 वे पद्य में ऊपर से ऐसा प्रतीत होता है कि यह भूषण कवि कश्यप गोत्रीय कनोजिया ब्राह्मण था, इसके पिता का नाम रत्नाकर था। यमुना नदी के किनारे पर त्रिविक्रमपुर नाम से एक नगर था, वहाँ रहते थे । दूसरे संदर्भो से ज्ञात होता है कि उस त्रिविक्रमपुर को आजकल टीकमपुर कहा जाता है तथा यह इस समय कानपुर जिले के अन्तर्गत आता है । इस भूषण कवि के चिन्तामणि, मतिराम तथा जयशंकर तीन भाई थे । ये चारों भाई अत्यंत प्रसिद्ध विद्वान थे तथा इनका (सरनेम) वर्ण त्रिपाठी था। इनके पिता रत्नाकर शक्ति के उपासक थे । देवी की कृपा से ही उन्हें ये चारों पुत्र प्राप्त हुए थे, इन सभी भाइयों में चिन्तामणि सबसे बड़े थे, यह नागपुर में सूर्यवंशी राजा भौसले संवाद शाह के आश्रय में अनेक वर्ष रहे, इन्होंने 'छन्द विचार पिंगल', 'काव्य विवेक', 'कविकुल 'कल्पतरु', 'काव्य प्रकाश' तथा 'रामायण' पांच ग्रंथों का सृजन किया था ।

शाहजहाँ बादशाह (सन् 1627 से 1648 तक) ने इन्हें अत्यन्त सम्मान देकर पुरस्कृत किया था । किसी-किसी स्थान पर उनका नाम मणिलाल भी लिखा मिलता है ।

भूषण कवि प्रथम तो पन्ना के राजा छत्रसाल के आश्रम में रहे । बाद में छः महीने बाद आप शिवाजी के दरबार में आ गए । यहाँ ये लगभग पन्द्रह वर्ष तक रहे । यहाँ इन्होंने अपनी वरिष्ठ काव्य सम्पदा से वर्षों तक शिवाजी महाराज का मनोरंजन किया । शिवाजी महाराज की ओर से इन्होंने बहुत धन, हाथी, घोड़ा आदि प्राप्त हुए । बाद में शिवाजी महाराज की सत्ता तथा यश कुमाऊं के पहाड़ों तक प्रसरित हो गई । उसे निरीक्षित करने के लिए वे 'डूंगरा' गए तथा वहाँ तक अपने सम्मान को फैला देखकर उन्हें संतोष हुआ।

'शिवराज भूषण' के अतिरिक्त भूषण कवि के 'भूषण हजारा', 'भूषण उल्लास' तथा 'भूषण उल्लास' भी ग्रन्थ हैं । इनके ग्रन्थों में रौद्र, वीर तथा भयानक ये तीन रसों का निदर्शन भलीभांति हुआ है ।

इनके छोटे भाई मतिराम कुमाऊँ के राजा उदोतचन्द्र भावचंद हाड़ा, बूंदी के राजा छत्रसाल तथा सोलंकी वंश के राजा शंभू उर्फ संभा जी (शिवाजी महाराज के बड़े पुत्र) सन् 1680 से 1689 तक) के विभिन्न दरबारों में आश्रयी रूप में रहे थे ।

'ललित ललाम' 'छन्दसार' तथा 'रसराज' ये तीन ग्रंथ मतिराम से छोटे भाई नीलकंठ कृत थे । 'बृन्द सतसइया' के बृन्द इन्हीं के वंशज थे, यह भी कहा जाता है ।

'भूषण काव्य' भूषण कवि ने सन् 1730 में रचा था, अर्थात शालिवाहन शक् सं. 1892 वे वर्ष में यह बनकर तैयार हुआ था । यह रचना समय के अन्तराल के साथ खराब हो गई है ।

शिवाजी महाराज का राज्याभिषेक शालिवाहन शक सं. 1695 में ही हुआ था । इससे कुछ ही पहले यह ग्रंथ कवि द्वारा रचा गया था । कवि ने इस ग्रन्थ में काव्यगत अलंकारों का वर्णन किया है । उदाहरणार्थ जो पद्य कवि द्वारा रचे गए हैं, उनमें शिवाजी महाराज का, उनके गुणों का तथा पराक्रमों का वर्णन है । अलंकार के लक्षणों के 107 पद्य हैं । उदाहरण के 171 पद्य हैं, इसके अतिरिक्त ग्रंथ के विषय की अनुक्रमणिका के 18 पद्य तथा रचनाकाल का एक पद्य तथा उपसंहार का एक पद्य तथा उपसंहार का एक पद्य इस ग्रन्थ में है । 107 पद्यों में 105 मुख्य-मुख्य अलंकारों के लक्षण इस ग्रंन्थ में कहे गए हैं। दोहा,सवैया, हरिगीत छप्पय तथा कवित्त इस तरह पॉच वृत्त इस ग्रन्थ में समाविष्ट हैं। इन पाँच में से दोहा तथा सवैया ये वृत्त महाराष्ट्र के अध्येता जानते हैं, तो भी ये पांचों छन्दों के लक्षण भूषण कवि के भी चिन्तामणि द्वारा रचे छन्दविचार ग्रन्थ में से हम आगे आकर छन्दों

का स्वरूप बालकों के सामने प्रस्तुत करते हैं ।'[5]

यहाँ हम संज्ञा आत्मने पद हैं जो लेखक अर्थात गोविन्द गिल्लाभाई के ही प्रथम पुरुष को सूचित करती है, इससे स्पष्ट आभास होता है कि गोविन्द गिल्लाभाई जब किसी ग्रन्थ को सम्पादित करते थे तो उससे सम्बन्धित सभी सूचनाएं तथा विवरण शोधपूर्वक तैयार कर लेते थे, तब ग्रंथ को विवेचित करके उसका सम्पादन करते थे ।

परिष्टि - 7 में गोविन्द गिल्लाभाई ने गुजराती भाषा में ही शिवराज भूषण में प्राप्त अलंकारों की सूक्ष्म विवेचना भी प्रस्तुत है ।

कुछ सूचनाएं उनके सम्पर्कों और सम्बन्धों की भी ज्ञापित करती है जैसे काशी कवि समाज से उनका अटूट सम्बन्ध था । इस सम्बन्ध के भी अनेक कारण थे । एक तो वह स्वयं स्थापित तथा प्रसिद्ध कवि थे जो अपने समय में पश्चिमांचली भारत का प्रतिनिधित्व करते थे, दूसरे उनके सम्पर्क सभी ग्रंथालयों, विद्वानों, कवियों एवं समीक्षकों से तथा राजवंशों से थे, इस कारण भी उन्हें साहित्य जगत की सूचनाएं मिलती रहती थीं, काशी कवि समाज में उनकी समुपस्थिति गोस्वामी आचार्यों से सम्पर्क द्वारा हुई, जिसमें काशी के श्री कन्हैयालालजी गोस्वामी, कांकरोली के गोस्वामी श्री बालकृष्णलालजी जैसे दिग्गज विद्वान पुरुषों से इनका सम्पर्क था, पुष्टिमार्ग में अडिग आस्था रखने वाले ये वैष्णव कवि थे, जिन्होंने 'खबास' परम्परा के गौरव को भी स्वीकार किया था तथा अनेक स्थानों पर अपने इस 'खबास' कार्य को ज्ञापित भी किया था, जैसे -

रजपूती चौहान हम खास खबास खुस्याल
श्री वल्लभ की चरन रज, शोभित कर निज भाल[6]

काशी कवि समाज के संदर्भ में कवि सूचनाएं प्रस्तुत करता हुआ लिखता है -

'वल्लभ वंशीय कांकरोली के गोस्वामी श्री बालकृष्णलाल जी महाराज बनारस (काशी) में अपने बड़े भाई श्री गोस्वामी जीवनलाल जी महाराज थे जो श्री गोपाललाल जी मंदिर के मालिक थे, उनसे मिलने के लिए पधारे थे । वहाँ वह बहुत समय तक विराजे । इस कारण वहाँ के विद्वत् समाज से उनका घनिष्ठ परिचय हुआ, फिर उन्होंने संवत् 1960 माधसुदी- 5को काशी में **'काशी कवि-समाज'** की स्थापना कर दी ।

इस कवि समाज की ओर से प्रत्येक पखवाड़े समस्यापूर्ति प्रस्तुत की जाती थी, वे पूर्तियाँ काठियावाड़ में सिंहोर में मेरे यहाँ भी आने लगीं । मैंने ये पूर्तियाँ भर कर भेजीं । तब

वह पूर्तिसंग्रह प्रकाशित होता था, उसका सब खर्चा महाराज श्री ही करते थे ।

उन काव्यपूर्तियों में जिसकी रचनाएं श्रेष्ठ होती थीं उसे महाराज श्री की ओर से पुरस्कार मिलता था और काशी कवि समाज के वार्षिकोत्सव में 'रिपोर्ट में उसके विषय विवरण में मेरा नाम दूसरे नम्बर पर था तथा दो बार श्रेष्ठ कविता रचना पर पुरस्कार प्राप्त हुआ था ।[7]

गोविन्द गिल्लाभाई ने अपनी शोध जिज्ञासा के लिए कोटा, कामवन, मथुरा, भरतपुर, जयपुर, नाथद्वारा, कांकरोली, डूंगरगाँव, करोली, खोयला डेला, बम्बई आदि का भी भ्रमण किया था, जिसने उन्हें भारत वर्ष में प्राप्त हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रन्थों से परिचित कराया ।

गोविन्द गिल्लाभाई को अध्ययन मनन का बडा शोक था अध्ययन के दरिम्यान जब भी उन्हें कोई भी महत्वपूर्ण तथ्य दिखाई देते तो वह उन्हें अपनी डायरी में नोट कर लिया करते थे । अधिकांश अपनी वैयक्तिक रुचि की ये सूचनाएं वह गुजराती में ही नोट करते थे। उदाहरण के रूप में 'अवध की बेगम' कृति का विवरण उन्होंने गुजराती में नोट किया था जो हिन्दी में रूपान्तर करके प्रस्तुत है -

'बसीर नसरुद्दीन के मरने के पीछे अवध का नवाब सफदरजंग, देहली के बादशाह के बजीर नियुक्त हुए थे । नसीसम भले अवध के नवाब लोग बराबर बजीर कहलाते आए हैं, नवाब सफदरजंग का लड़का बजीर शुजाउदौला अवध का नवाब था ।

सन् 1774 ईस्वी में नवाब सुजाउदौला ने रुहेलखण्ड पर चढ़ाई करने की इच्छा से अंग्रजों से सहायता माँगी थी, धन के लोभ में अंग्रेजों ने मदद करना स्वीकार किया, सन् 1774 ई. के आरंभ में अंग्रेज सेनापति जनरल चिम्पिचल ने अवध आकर रुहेल खण्ड पर चढ़ाई में मदद की ।

रुहेल खण्ड के अस्सी वर्ष के बूढ़े हाफिज रहमल खान ने सामना करने की तैयारी की ।

सन् 1674 में शाहे आलम और हुसैन खां नामक दो भाई फताहार (रुहेलखण्ड) में रहा करते थे । दोनों अफगानी थे । इधर शाह आलम के दो लड़के थे, बड़े का नाम दाउद खां और छोटे का नाम हाफिज रहमत खां था ।

दाउद खां कुमाउ राजा का सेनापति था पर राजीनामा देने से कुमाऊँ राजा ने

उनके हाथ पॉव काट डाले । इससे वह मर गया । दाउद खां का छोटा लडका अली मुहम्मद उसका बैर लेने को तैयार हुआ ।

अली मुहम्मद रुहेल खण्ड का नवाब हुआ । रुहेल खण्ड में 'विसूली' गाँव से सुजाउदौला की सवारी से वहॉ रुहेली स्त्रियों की पालकी लाई गई । तब सुजाउदौला ने अपने बहनोई सालार ज़ंग बहादुर के साथ हाफिज की कन्या सिवाय दूसरी सब देहली से कैदी बना इलाहाबाद भेज दिया । और हाफिज की कन्या को खास थोड़े सिपाहीयों के साथ फैजाबाद में नवाब की खास बेगम साहिबा के पास भेज दिया गया ।

अमरसिंह और छत्रपति को नवाब सालारजंग के साथ इलाहाबाद जाने की आज्ञा हुई ।

हाफिज जी की स्त्री और कन्या, विसूली थी जुदां पाया ।

अमरसिंह और छत्रसिंह इलाहाबाद से देहली पहुँचाने को जाते थे, पर रास्ते में मंदिर होने का बहाना करके फैजाबाद आ गए ।

खुर्दमहल, रखैल स्त्रियों का महल था । **'सियारुल युताखरीन'** ग्रंथ में सत्य लिखा है - अवध तथा कुमाऊं पर्वत के बीच में गंगा नदी के पूर्व तरफ जो लम्बा चौड़ा देश, पहले 'फताघर' नाम से प्रसिद्ध था । वह अठारहवीं शताब्दी में रुहेले सरदार अली मुहम्मद की सरदारी पासवाने के साथ रुहेल खण्ड नाम से प्रसिद्ध हुआ ।[8]

हालांकि साहित्य के प्रदान में इस प्रकार के तथ्यों का या ऐतिहासिक कथ्यों का कोई सीधा सरोकार नहीं लक्षित होता किंतु देशराती परिस्थिती के अध्ययन के लिए इन तमाम तथ्यों को विश्लेषित करके किसी निश्चित निर्धारित तक अवश्य पहुँचा जा सकता है।

गोविन्द गिल्लाभाई जब किसी ग्रन्थ को सम्पादित करते थे तो अपने पूर्ववर्ती विद्वानों के कथ्यों का भी विश्लेषण करते थे । उन्होंने 'शिवसिंह सरोज' में उल्लिखित सभी कवियों की अकारादि सूची बनाकर तैयार की थी ।[9]

इसमें उन्होंने शिवसिंह सरोज के 553 कवियों की सूची बनाई थी तथा उस ग्रन्थ में और जो भी कुछ विवेचित था, उसकी भी सूची बना ली थी ।

उदाहरण के रूप में जैसे उन्होंने बिहारी-सतसई के सम्पादन की अपनी मनस्थिति बनाई तो सर्वप्रथम बिहारी-सतसई पर हो चुके तमाम सम्पादन कार्यो का उन्होंने गहराई से अनुसंधान परक अध्ययन किया । उन्होंने अपने समय तक प्राप्त अधिकांश बिहारी सतसई की

टीकाओं का अवलोकन किया । अपने अध्ययन पथ में प्राप्त बिहारी सत्सई की तमाम टीकाओं की सूची उन्होंने इस प्रकार प्रदान की है -

अनवर चन्द्रिका - शुभकरन कविकृत,

अमर चन्द्रिका - सूरति मिश्र कृत,

साहित्य चन्द्रिका - करन भट्ट कृत,

लाल चन्द्रिका - लाल बनवारी बन्दीजन कृत,

उपसतसैया (कुंडलियों में) - गंगाधर कृत,

प्रबंध घटना - गोपाल शरण कृत,

कवित्त बंध - कृष्ण कवि कृत,

कृष्णलाल की टीका - कुन्डलियाँ बंध टीका,

चंद कवि कृत - बिहारी टीका,

रामवख्श कृत - बिहारी टीका,

जुल्फेकार बिहारी टीका - ईसुप सखा,

बिहारी टीका - रघुनाथ,

कानबिन चित्र चन्द्रिका - सरदार,

बिहारी टीका - ठाकुर कवि कृत,

रस कौमुदी - रसिक बिहारी,

बिहारी बिहार - अम्बिकादत्त व्यास कृत,

बिहारी बिहार - अम्बिकादत्त व्यास कृत,

बिहारी टीका - रामकृष्णकवि कृत

सतसई श्रंगार - बाबू हरिश्चन्द्र

बिहारी टीका - लल्लू जी लाल

बिहारी टीका - मानसिंह जैनी उदयपुर

इसी प्रकार गोविन्द गिल्लाभाई ने अपनी डायरी ने 31 संस्कृत में रची गई बिहारी सतसई की टीकाओं का भी उल्लेख किया है, इससे कवि की बहुज्ञता, अनुसंधान क्षमता तथा

अध्ययन गम्भीरता स्पष्ट होती है ।

'भाषा कविन के चरित्र' आप द्वारा सम्पादित महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिससे अनेक ज्ञात, अल्पज्ञात तथा अज्ञात कवियों के परिचय सम्पादित किए गए हैं ।

इन कवियों के परिचयात्मक विवरण में उनके कृतित्व एवं जीवन पर शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

सम्पादन कला

गोविन्द गिल्लाभाई ने हिन्दी में सम्पादन कला को अत्यन्त विकसित रूप प्रदान किया, इससे पहले हिन्दी में विवरणात्मक, टीकाएँ तथा समालोचनाएं तो मिलती हैं किन्तु सम्पादन कला का जो वैज्ञानिक और व्यवस्थित रूप गोविन्द गिल्लाभाई ने प्रस्तुत किया था वह अप्रतिम एवं अनूठा है । इससे पहले सम्पादन के नाम पर संकलन ग्रंथ ही अधिकतर संयोजित हुए हैं ।

गोविन्द गिल्लाभाई से पहले सम्पादन का अर्थ पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन तक ही सीमित था हिन्दी ग्रन्थों के व्यवस्थित सम्पादन का क्रम बहुत प्राचीन नहीं है ।

संस्कृत में सम्पादन का अर्थ संकलन एवं संशोधित पाठ-संयोजना से ही ग्रहण किया जाता था, संस्कृत के कुछ वरिष्ठ प्रकाशन संस्थाओं ने संस्कृत के पौराणिक ग्रन्थों को शुद्ध पाठ तैयार करके सम्पादित अवश्य किया इसमें बम्बई के वैंकटेश्वर प्रेस, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, गीता प्रेस गोरख पुर, अग्रवाल प्रेस मथुरा, देहाती पुस्तक भंडार दिल्ली आदि संस्थानों में व्यावसायिक दृष्टि से लाभदायी अभियोजना के अन्तर्गत-पुराणों एवं संस्कृत के काव्य-साहित्य के ग्रंथों को सम्पादित कराया गया था । गीताप्रेस गोरखपुर धर्म पत्रचारार्थ लागत मूल्य पर ही धार्मिक पुस्तकों को प्रकाशन करने का यत्न कर रहा था, गीताप्रेस से महाभारत, रामायण, भागवत, गीता, विष्णु पुराण तथा अन्यान्य, पौराणिक ग्रन्थों को पाठशुद्धि के आधार पर प्रकाशित किया था, इसमें सम्पादन के नाम पर पाठभेद ही प्रस्तुत करना पर्याप्त समझा गया था । गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित प्राचीन पुराण ग्रंथों में पृष्ठ के नीचे प्राप्त इतर पाठ भी दिये जाते थे, जो अब नहीं दिए जाते ।[10] इस प्रकार के पाठभेदों को सम्पादित करने के लिए यथा प्राप्त पाण्डुलिपियों को एकत्र करके कुछ विद्वानों द्वारा अधिकारिक पाठ निर्धारित किया जाता था ।

बाद में भंडारकर पुस्तकालय तथा नागरी प्रचारिणी सभा ने सम्पादन कार्य के

अन्तर्गत कुछ महत्वपूर्ण कार्य किए । कुछ विश्वविद्यालयों में भी परिवर्तित वैज्ञानिक दृष्टि के साथ संस्कृत के कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथों के सम्पादित कार्य ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट ऑफ महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी बडौदा द्वारा किए गए जिनमें विष्णु पुराण तथा वाल्मीकी रामायण के साथ भरत मुनि के नाट्यशास्त्र को भी सम्पादित किया गया ।

हिन्दी में सम्पादन कार्य का व्यवस्थित रूप नागरी प्रचारिणी सभा इलाहाबाद ने किया, इस क्रम में बाबू रामचन्द्र वर्मा, श्याम सुन्दर द्वारा, बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर , आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ. सत्येन्द्र, डॉ. नगेन्द्र, पो. कण्ठमणि शास्त्री गो. श्री व्रजभूषण लाल महाराज प्रभृति विद्ववानों ने हिन्दी के अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों को सम्पादित करके प्रकाशित कराया है ।

गोविन्द गिल्लाभाई जिस दौर में कार्य कर रहे थे, उस दौर में मिश्र बन्धु विनोद जैसे अनुसंधान कर्ता भी साहित्य का इतिहास निर्माण कर रहे थे ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मलिक महोम्मद जायसी के पदमावत को, सूर के भ्रमरगीत को तुसली के कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों को सम्पादित किया । एक विस्तृत और गम्भीर भूमिका के साथ उन्होंने शुद्ध पाठ देकर अपने सम्पादन कार्य की इति श्री कर दी । आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'बिहारी' के काव्य पर समालोचनात्मक ग्रन्थ लिखकर अनेक परम्परित मान्यताओं के विरुद्ध अपना हठाग्रह व्यक्त किया । इसी तरह देव और बिहारी को लेकर समालोचनाएं हुई और फिर देव तथा बिहारी के अन्य काव्य ग्रन्थ खोजे जाने लगे ।

नागरी प्रचारिणी सभा की पत्रिका में खोज रिपोर्ट निकलने लगीं जिसमें प्राप्त हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों एवं कवियों का विवरण प्रकाशित होने लगे ।

इस प्रकार गोविन्द गिल्लाभाई के समय में हिन्दी ग्रन्थों के संकलन एवं सम्पादन का कार्य तो जोर शोर से हो रहा था किन्तु यह सम्पादन कार्य सम्पादकीय महत्ता को ज्ञापित न करके ग्रन्थ के प्रभाव को ही स्पष्ट कर पा रहा था । सम्पादन के नाम पर लम्बी चौडी भूमिका उस ग्रन्थ के प्रभाव को ही स्पष्ट कर पा रहा था । सम्पादन के नाम पर लम्बी चौड़ी भूमिका उस ग्रन्थ का वृहद् विश्लेषण अवश्य कर देती थी ।

गोविन्द गिल्लाभाई ने इस सम्पादन कार्य को कलाभिमुखी संवेदना से जोड दिया । उनके द्वारा सम्पादित ग्रंथ अपनी अतिरिक्त सम्पादकीय आभा लेकर प्रगट हुए हैं । गोविन्द गिल्लाभाई ने कुछ विशिष्ट ग्रंथों के सम्पादन में अपनी कलाचेतना प्रखर प्रज्ञा का विस्तृत

निदेशन किया है । यहाँ उनकी सम्पादन-कला के कुछ उद्धरण दृष्टव्य हैं ।

गोविन्द गिल्लाभाई ने 'अनन्य' नामक कवि के तीन ग्रन्थों का विवरण भाषा कवि के चरित्र उन्होंने 'शिवसिंह सरोज' की शैली पर सम्पादित किया था । जहाँ शिवसिंह सरोज में विवरणात्मक इतिवृत्यतात्मक सूचनाएँ दी हैं, वहाँ गोविन्द गिल्लाभाई ने परिचयात्मक विश्लेषण में अपनी साहित्य रुचि को भी ज्ञापित किया है तथा अपनी अतिरिक्त जानकारी को भी प्रस्तुत किया है यथा -

''लखपति - कच्छ के महाराजा राव श्री लखपति सिंहजी :- कच्छ देश के महाराज श्री देशलजी के यहाँ ईस्वी सन् 1707 में एक कुमार का जन्म हुआ । वह जब 34 वर्ष का हुआ, तब उनके पिता की ही हयाती (जिन्दगी) में ही 1941 में ईस्वी में गद्दी पर बिराजमान हो गए ।

वह बहुत उदार तथा विषय विलासी थे । उनको कविता तथा गायन का बहुत शौक था । और स्वयं भी कविता करते थे, उन्होंने ई. सन् 1752 से 1761 तक मे भुज नगर में कविता सीखने के लिए काव्य पाठशाला स्थापित की थी और जैन साधु कनक कुशल को भट्टार्क की पदवी देकर ब्रजभाषा की कविता सिखाने के लिए अध्यक्ष नियत किए गए और खर्चा के लिए दो-तीन हजार की वार्षिक उपज का एक 'रेहा' नामक गांव भी बख्शीश कर दिया । वह अद्यापि पर्यन्त उनके शिष्यों के पास है और शाला का खर्च चलता है ।

भट्टारक श्री कनक कुशल के शिष्य कुंअर कुशल महापंडित थे, उन्होंने राव लखपति के नाम से सर्वसाहित्यमय एक वृहद् ग्रन्थ **लखपत जससिंधु** नामक बनाया है । वह बहुत उत्तम और देखने योग्य है । वह हमारे पास लिखा हुआ है ।

राव लखपति सिंह जू खुद भी कवि थे । उन्होंने लखपति श्रंगार 'लखपति मानमंजरी' सुर तरंगिनी, मृदंग मोहरा, राग सागर आदि का ग्रंथ बनाए हैं ।

यह महाशय ईस्वी सन् 1817 में स्वर्गवासी हुए तब इन्ही के साथ 16 रानी भी जलकर सती हो गई थीं ।

यह कविता में अपना नाम लखधीर रखते थे ।''[11]

एक अन्य स्थल पर उन्होंने अपनी शोध परक काव्य दृष्टि को भी प्रदर्शित किया है । जिसमें उनकी साहित्य रुचि और अध्ययन गम्भीरता का परिचय मिलता है । यथाः-

अनन्य कवि : शिवसिंह सरोज में चार अनन्य कवि हैं । उनमें नं. 18 वाले अनन्य

कवि का संवत 1790 लिखा है । दूसरे नं. 30 को अक्षर अनन्य नाम से अभिहित किया है। तीसरे नं. 31 वाले का संवत् नहीं लिखा है, किन्तु उन्हें दुर्ग पाठ भाषा बनाने वाला कहा है, चकदेवा जिला गौड़ा के रहने वाले । पृथ्वीराज चौहान के पास सं. 1225 में थे । उन्होंने 'अनन्ययोग' नामक ग्रंथ की भी रचना की थी ।

जोधपुर निवासी मुंशी देवीप्रसाद जी ने अनन्यदास को कायस्थ और बीकानेर का निवासी बताया है । क्योंकि बीकानेर के महाराजा रामसिंह जी सं. 1618 तक जीवित थे । इनके छोटे भाई पृथ्वी सिंह जी थे, ये अकबर बादशाह की सभा के सभासद थे, 'रुकमणी बेल' नामक महाग्रन्थ उन्होंने रचा था ।

यह ग्रन्थ पृथ्वीराज के लिए अनन्यदास ने रचा था । इसका नाम **'अनन्य प्रकाश'** था ।

गोविन्द गिल्लाभाई ने अनन्य दास के अन्य तीन ग्रन्थों के नामों का उल्लेख किया है -

1. अनन्य योग
2. विज्ञान बोध तथा
3. सुन्दरी चरित्र ।

ये पाठ भाषा में है । इन ग्रन्थों में पुष्पिका नहीं है । तथा अनन्य कवि के विषय में भी कुछ विवरण नहीं मिलता, पृथ्वीराज नाम के अनेक राजा हुए, उनमें से एक का निश्चित रूप से निर्णय नहीं किया जा सकता ।

गोविन्द गिल्लाभाई के अनुसार जयपुर के महाराजा चन्द्रसेन के पुत्र पृथ्वीराज संवत् 1559 से 1584 तक गद्दी पर विराजमान थे और वही उनके आश्रयदाता रहे होंगे ।

ये साधू महात्मा कृष्णदास पत्रधारी के शिष्य थे, इनके समय मे साधु और जोगियों का बोलबाला था, जादू टोना की अनेक किंवदन्तियाँ इनके नाम से जुड़ी थी ये ही अन्यदास के आश्रय दाता थे ।

इनके तीनों ग्रन्थों के विवरण ध्यातव्य हैं -

राजयोग ग्रन्थ का मंगलाचरण प्रारम्भ -

॥ सवैया ॥

आतम ज्ञान सु ज्ञान यहै,

परमातम ध्यान सु ध्यान सुरेश्वर ।

वेद विधान विधान वहै,

सत पात्रहिं दान सुदान छानेश्वर ।

अन्तर भक्ति सु भक्ति वहै,

गति अन्तर की परखै परमेश्वर ।

वेद प्रधान 'अनन्य' नमै यह,

भेद सुनौ पृथ्वीचंद नरेश्वर ॥

राजयोग के अन्त की काव्य पंक्तियां :

॥ पद्धरि छन्द ॥

जो राजयोग यह सधै राज ।
तो मनवांछित सब होय काज ।
अरु कर्म लिप्त, कबहु न होत ।
जग जीवन मुक्त सदा उदोत ।
सुखमार्ग यह पृथ्वीचंद राज ।
या सत्र आन-न-मन इलाज ।
यह ज्ञान भेद अरु वेद साखि ।
'अक्षर अनन्य' सिद्धान्त भाषि ।

॥ दोहा ॥

राजयोग सिद्धान्त यह, जान राम पृथ्वीचंद ।
या सम नहिं मत दूसरौ, खोज शास्त्र बहु छंद ।
जो चाहौ संसार सुख, अरु सिद्धान्त प्रकाश ।
तौ साधौ सरवज्ञ यह, राजयोग इतिहास ।

अथ विज्ञान बोध ग्रन्थ की अंतिम कविता :-

विद्यानाम पठन कौं नाहीं, नहिं पोथी न पुराना ।
जैसे कौ तैसे मनु समझै, यहै विदित विज्ञाना ।
अक्षर अनन्य कहै यह गाथा, यहै गुरू गुरु अर्चा ।
पृथ्वीचंद नृपराज जानियै, यह सम और न चर्चा ॥

अथ सुन्दरी चरित्र ॥ दुर्गाचाठ की कविता -

॥ मंगलाचरण दोहा ॥

सुन्दर पद गुरुनाथ के, सुन्दर गुरु उपदेस ।
सुन्दर चरित्र भावानि के, सुन्दर सुरथ नरेश ॥

टीका :- यह दोहा में सुन्दर पद गुरुनाथ के पद से ज्ञात होता है कि - अनन्य जी नाथ बाबा के शिष्य रहे होंगे क्योंकि इन्होंने नाथ को गुरु माना है ।

॥ कवित्त ॥

बाढ्यौ महिषासुर प्रचंड, बलवंद महा,
जाकी धाक सुनि कै विधाता धक पर्‌यौ है ।
ढाहत गुरु कोटन गिरावत गिरि श्रंगन सौं,
खुदत खुरनि धरा शेष सक पक्यौ है ।
सातौ दीप दपट समुद्र दहि चाल करि,
सुर ससि वारेन कों, पलक परक्यौ हैं ।
'अक्षर अनन्य' जाहि, आवता सुनन कान,
देवन समेत भागि इन्द्र अकपक्यौ है ॥

॥ सवैया ॥

लहि आयसु धांय रिसायपुरी
गलि गर्जिपरी भकि रुंडनि में ।
जित ही नित दैयत आनि अरै,
जित ही तित भारहिं, मुंडनि में ।
'मन अक्षर' व्योम महा रिपु छैरति,
पैरति शोणित कुंडनि में ।
बल के हरि ज्यौं दस केलि करैं,
अरि कुंजन पुंजनि झुंडनि में ॥

॥ कवित्त ॥

धरकि धरकि धिर धरनि धरन धर,

करखि कमठ कमलिनि दस चचकति ।

डगत नगर द्रग भगत जगत गिरि,

भगत नयन मय सूर सब बचकति ।

'अक्षर अमर' अकबक सकपक परि,

धकपक विधि शेष बधुवज बचकति ।

चलति जु प्रबल, निशुंभु सु पृथल दल,

अल थल विकल सकल महिमचकति ।।[12]

गोविन्द गिल्लाभाई ने इस प्रकार के काव्य ग्रन्थों की विवेचना में भी अपनी काव्य मर्मज्ञता ज्ञापित की है । कहीं कहीं तो सम्पादित ग्रन्थ के मध्य में भी ऐतिह्य तथ्य देकर ग्रन्थ के कथ्य की प्रामाणिकता प्रदर्शित की है । तो कहीं कहीं उस काव्य के सुन्दरतर काव्यांशों की व्याख्या करने का मोह भी वह नहीं छोड़ पाये हैं ।

यदि सम्पादित ग्रन्थ के कुछ काव्यांश अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत हुए हैं तो कवि ने दूसरे अन्य कवित्तों से उसकी तुलना भी की है, पूर्ववर्ती या परवर्ती काव्य के उदाहरण देकर उसे पुष्ट भी किया है ।

जब भी कोई ग्रन्थ गोविन्द गिल्लाभाई ने सम्पादित किया है । तब उसकी महत्वपूर्ण भूमिका में उसका वैशिष्ट्य भी स्पष्ट किया है ।

कवि द्वारा संकलित, संयोजित, सम्पादित एवं संग्रहीत ग्रन्थों मे उनके सम्पादित ग्रन्थों की संख्या सर्वाधिक है ।

सम्पादन की विशिष्ट शैली

गोविन्द गिल्लाभाई की एक विशिष्ट सम्पादन शैली थी जिसके अन्तर्गत वह क्रमिक रूप से ही कार्य करते हुए ग्रन्थ सम्पादन करके संतुष्ट हो पाते थे ।

सर्वप्रथम वह किसी भी ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ का चयन कर लेते थे जिसकी मूल आधार प्रति प्रारम्भ होती थी तथा साहित्य जगत में उस कृति की महत्ता भी होती थी ।

दूसरे चरण में गोविन्द गिल्लाभाई उस ग्रन्थ की दूसरी पांडुलिपियों की शोध करते थे, यदि पांडुलिपि प्राप्त नहीं होती और केवल सूचना मिलती कि दूसरी पाण्डुलिपि अमुक ग्रंथागार में या दरबार में है तो वह उसके लिए प्रयास करते थे, दरबारों में राजा महाराजाओं के संरक्षण में संयोजित ग्रन्थागारों के लिए वह अपने पहचान के राजा महाराजाओं के द्वारा

संपर्क बनाते थे या फिर अपने किसी साहित्यकार विद्वान के द्वारा ग्रन्थ की प्रतिलिपि करा लेते थे, यदि यहभी संभव नहीं हो पाता था तो स्वयं वहां पहुंच कर, वहीं पर रहकर स्वयं प्रतिलिपि तैयार करते थे । इस प्रकार अनेक प्रतिलिपियॉ तैयार करके पाठभेद के आधार पर अधिकारिक प्रति तैयार हो जाती थी, आधिकारिक पाठ के लिए भी वह तीन चरण में कार्य सम्पादित करते थे, प्रथम तो यह यत्न करते थे कि स्वयं रचनाकार के हाथ की मूल प्रति मिल जाय, या फिर उसके वर्तमान काल की प्रति को आधार प्रति बनाते, यह भी संभव न होंता तो सर्वाधिक प्राचीन प्रति को आधार प्रति बनाते, यह भी संभव न होता तो सर्वाधिक प्राचीन प्रति को केन्द्र में रखकर अन्य प्रतियों से पाठभेद तैयार करते थे ।

इसके बाद भी ब्रजभाषा के शुद्ध व्याकरण की कसौटी पर तथा प्राचीन कवियों को काव्यभाषा के आधार पर संशोधन किया जाता था । इसके बाद उसका मूल पाठ गोविन्द गिल्लाभाई तैयार करते थे ।

कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों के सम्पादन करते समय लेखक उसकी विषय वस्तु को विवेचित करता था, सूची बनाता था, छन्दों के प्रकार तथा परिणाम लिखता तथा उसके वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालता ।

यदि सम्पादित ग्रंथ काव्य संकलन या संग्रह होता तो उसमें समाविष्ट कवियों की सूची, उन कवियों का यथोपलब्ध परिचय भी प्रस्तुत करता । तीसरे प्रकार के सम्पादन में जहॉ गोविन्द गिल्लाभाई ने कवियों के कृतित्व और जीवन पर संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करके इतिहास का रूप उसे प्रदान किया जाता था । गोविन्द गिल्लाभाई निःसंकोच रूप से यह स्वीकार कर लेते थे उन्होंने किस अन्य ग्रन्थ का आधार लिया है या कहॉ-कहॉ से सामग्री एकत्र की है । इस प्रकार ब्रजभाषा काव्य ग्रन्थों के सम्पादन के संदर्भ में उनका प्रदान महत्वपूर्ण रहा है ।

गोविन्द गिल्लाभाई ने केवल अल्पज्ञात या अज्ञात कृतियों को ही सम्पादित नहीं किया वरन् ज्ञात और प्रसिद्ध कवियों के ग्रन्थ भी सम्पादित किए, आलम,पदमाकर और ग्वास के काव्य संग्रह भी सम्पादित किए । बिहारी सतसई को भी संग्रहीत किया । इसके अतिरिक्त वह स्वयं एक समर्थ और सक्षम आचार्य कवि थे । उनका स्वयं का भी काव्य सृजन विपुल था । उन्होंने स्वयं अपने भी ग्रन्थों को सम्पादित किया, उनका पूर्ण विवरण तैयार किया, और हिन्दी साहित्य जगत को महत्वपूर्ण सूचनाओं से अवगत कराया, 'गोविन्द हजारा' तथा 'भाषा

कविन के चरित्र' उनके इसी प्रकार के ग्रन्थ है ।

गोविन्द गिल्लाभाई स्वयं कवि थे इसलिए कविता के मर्म को पहिचानने में भी वह कुशल थे, उन्होंने अधिकांशतः उन्हीं ग्रन्थों को सम्पादित किया था जिसमें उनकी वैयक्तिक रुचि थी, वह सम्पादित ग्रंथ की 'प्रेस कापी' भी तैयार करते थे तथा प्रकाशकों एवं मुद्रकों से सम्पर्क भी बनाते थे । पुस्तक प्रकाशन के लिए द्रव्य सहायकों को भी तैयार करते थे । उन्होंने अनेक सम्पादित ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना बनाई थी, किन्तु धनाभाव के कारण उनकी योजना पूर्ण नहीं हो पाई ।

गोविन्द गिल्लाभाई को गुजराती हिन्दी खड़ी बोली, उर्दू, ब्रजभाषा आदि का अच्छा ज्ञान था उनकी बहुभाषाविद सामर्थ्यशक्ति ने भी उनके सम्पादन कार्य को वैज्ञानिक रूप प्रदान किया था ।

कहीं कहीं गोविन्द गिल्लाभाई ने सम्पादित ग्रंथ के तथ्यान्वेषण में ऐसे नवीन रहस्यों का भी उद्घाटन किया है जो अन्यत्र नहीं मिलते । जैसे कवि गोविन्द गिल्लाभाई के ज्येष्ठ पुत्र 'जयसिंह' काठियावाड़ के भावनगर के ठाकुर साहब हरीसिंह जी के साथ काशी यात्रा पर गए थे और वहीं दिवंगत हो गए थे, यह तथ्य 'भाषा कविन के चरित्र' ग्रन्थ में हरीसिंह जी के जीवनवृतांत में उद्घाटित हुआ है । हरीसिंह जी का परिचय उन्होंने इस प्रकार दिया है ।

हरिसिंह जी :-

काठियावाड़ में भावनगर में भाया और बरल गांव के ठाकुर साहब थे । संवत् 1915 में जन्म हुआ था तथा संवत् 1959 मं कुल 44 वर्ष की आयु में काशी में निधन हो गया था ।

ये महाराज कुमार राजकोट किंग कालेज में अंग्रेजी एवं गुजराती पढ़े फिर संगीत में गाना बजाना सीखा । राग रागिनी की पहिचान की ।

काव्य कला का विधिवत ज्ञान प्राप्त किया । चित्रकला में दक्ष थे, राजा रविवर्मा की कोटि की चित्रकला में परांगत थे । आप धर्म शास्त्र वेद पुराण के ज्ञाता थे, इनकी सभा में धर्मचर्चा ही प्रमुख रहती थी ।

इन्होंने भावनगर में प्रथम थियोसोफीकल सोसाइटी की शाखा स्थापित की थी । आप उस संस्था के प्रेसीडेन्ट भी रहे ।

वर्तमान काल में काठियावाड़ में सर्वाधिक सक्षम तथा प्रभावशाली महानुभाव थे ।

क्योंकि इन्ही के समीप कवि कोविदों का आनाजाना लगा रहता था । कलाकार, गायक, वादक नर्तक आते जाते रहते थे ।

आप कलाकरों का सम्मान करने वाले थे । आप 'रावल श्री हरीसिंह जी काठियावाडी अटक से प्रसिद्ध थे । आप जैसा प्रसिद्ध कोई दूसरा व्यक्ति यहाँ नहीं था ।

इन्होंने **श्रीमद् भगवत् गीता का पद्य में भाषान्तर** किया था । तथा -

'संगीत शकुन्तला नाटक' ये दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचे थे, जिससे इन्हें प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी । इनके फुटकर कवित्त गीत सवैया पद-कीर्तन और समस्यापूर्ति काव्य बहुत हैं । इनका संग्रह हमारे (गोविन्द गिल्लाभाई) पास है ।

क्योंकि ये महाशय मेरे (गोविन्द गिल्लाभाई के) इष्टदेव गुरू थे । और इन्हीं के साथ मेरे ज्येष्ठ पुत्र जयसिंह काशी में दिवंगत हुए थे ।[13]

इससे आभास मिलता है कि किसी दुर्घटना में हरीसिंह जी एवं गोविन्द गिल्लाभाई के पुत्र की मृत्यु हुई होगी तथा कवि इन हरीसिंह जी को गुरुवत आदर भी दिया करते थे। इनके काव्य को इन्होंने संकलित करके संग्रहीत भी किया है ।

'भाषा कविन के चरित्र' में गोविन्द गिल्लाभाई ने अनेक मुसलमान कवियो के भी प्रथम बार परिचय दिए हैं । इनमें अकबर, लालखां, वहाब, बाजिद शाह, शाह हुसेन, हफीजुल्ला खां, खुदाबख्श, अल्लारखां, शेख, सुलतान, सुलतान पठान, सुलतान सिंह, हिम्मत खां, हाकिम हुलास, हुसैन, अहमद, आलम, उम्मर खान, गुलाम खां, गुमान कवि जमाल खां, दीनदरवेश आदि का यथोपलब्ध परिचय इन्होंने देकर अपने तटस्थ साहित्यकार के दायित्व का निर्वाह किया है ।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्लाभाई द्वार सम्पादित ग्रंथ उनकी विशिष्ट प्रतिभा, कलाचेतना, विद्वता तथा कुशलता के प्रमाण हैं । उन्होंने हिन्दी जगत में इस सम्पादन विधा को व्यवस्थित रूप से प्रतिष्ठापित किया है; इसमें संदेह नहीं है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा तथा आचार्य कवि गोविन्द गिल्लाभाई - डॉ. मालारविन्दम् चतुर्वेदी भारत प्रकाशन मंदिर पृष्ठ - 97
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल पृ. 461
3. प्राच्य विद्या मंदिर वडोदरा की हिन्दी विभाग की पांडुलिपि में गोविन्द गिल्लाभाई की निजी डायरी से
4. वंशावली - (सूर्यवंशी राजाओं की वंशावली) (प्राच्य विद्या मंदिर - बंद्य संख्या 200 में निजी डायरी का विवरण)
5. वही-ग्रन्थ बंध 200 में
6. वही वंश संख्या 205 के गोविन्द गिल्लाभाई हजारा ग्रन्थ मे से
7. वही बंध संख्या - 200 से
8. प्रसव विद्या मंदिर छंद संख्या 200 में से डायरी के अंश
9. बंध संख्या 200 पर निजी डायरी के पृष्ठ 31 पर
10. गीताप्रेस गोरखपुर से मुद्रित श्रीमदभागवत् मूल पाठ सन 1960 के संस्करण में
11. बंध संख्या 207 पर लखपतसिंह कवि के विवरण में - भाषा कविन के जीवनवृत्त में
12. प्रा. वि. मन्दिर बंध संख्या - 207
13 भाषा कवित्त के चरित्र संख्या 370